by - D. K. Singh

अकबर की धार्मिक नीति

मध्यकालीन शासकों में अकबर की धार्मिक नीति का विशिष्ट महत्व है। अकबर के पूर्व सल्तनतकालीन शासकों द्वारा उदार धार्मिक प्रवृत्ति का प्रदर्शन प्रायः नहीं हुआ था। शेरशाह ने इस दिशा में कुछ प्रयास अवश्य किये थे परन्तु एक पूर्णतः उदार धार्मिक नीति का आरंभ अकबर के शासनकाल में ही संभव हुआ।

अकबर की धार्मिक नीति के निर्धारण में विभिन्न तत्वों का योग रहा है। सर्वप्रथम अकबर व्यक्तिगत रूप से उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति था। धार्मिक क्षेत्र में वह किसी विशेष मत का समर्थक न होकर सत्य का आग्रही था। उसके दरबारी इतिहासकार अबुल फजल के अनुसार सम्राट गंभीर चिन्तन एवं सोच-विचार में बराबर डूबा रहता था और इसका मुख्य उद्देश्य ईश्वर एवं सत्य के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता थी। अतः अकबर रूढ़िवाद से परे था। उसके पूर्वज भी धार्मिक कट्टरता से मुक्त थे। बाबर ने हुमायूँ को शासन सम्बन्धी जो सुझाव दिये थे उसमें हिन्दू प्रजा के प्रति उदारता प्रदर्शित करने का सुझाव भी था। हुमायूँ के शासनकाल के अस्थिर वातावरण में यह नीति कार्यान्वित न हो सकी किन्तु अकबर ने इसे बड़ी कुशलता से लागू किया जिसमें उसे सफलता भी मिली।

अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित करने में उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ का भी योगदान रहा है। अकबर स्वयं एक सुन्नी पिता एवं शिया माता की संतान था और गुरु अब्दुल लतीफ सूफीमत में विश्वास रखता था। अतः अकबर पर आरंभ से ही इस्लाम धर्म की विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा। आगे चलकर अकबर का सम्पर्क हिन्दू धर्म के साथ भी घनिष्ठ रूप से हुआ जब उसने राजपूत राजघरानों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। कालांतर में उसका सम्पर्क ईसाइयों एवं पारसियों के साथ भी हुआ जो उसके द्वारा मुगल दरबार में आमंत्रित बुलाये गये थे। इन विभिन्न विचारधाराओं ने अकबर को सभी धर्मों के प्रति सद्भाव एवं सहिष्णुता की नीति अपनाने को प्रेरित किया।

P - 1

अकबर को इस उदार धार्मिक नीति के कार्यान्वयन के लिये अनुकूल वातावरण भी प्राप्त हुआ। सल्तनत काल में विशेषकर 15वीं शताब्दी एवं 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में भक्ति आन्दोलन के संतों एवं सूफी संतों ने धार्मिक कट्टरता की भावना को कम करने और हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच अलगाव में कमी लाने में सराहनीय योगदान दिया था। अतः धार्मिक उदारता की यह नीति जनसाधारण घर कर गई जिससे अकबर को अपनी उदार नीति संचालन काफी सहायता मिली।

जहाँ तक अकबर की धार्मिक नीति का प्रश्न है इसका विकास क्रमिक रूप से हुआ। वस्तुतः 1560 तक अकबर के दरबार में कट्टरपंथियों का वर्चस्व था किंतु इसके बाद अकबर ने हिन्दुओं के प्रति अपनी सहृदयता का प्रदर्शन किया। 1562 में अकबर का राजपूतों के साथ सम्बन्धों की नींव पड़ी और इसने आमेर के राजघराने से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसके कुछ समय बाद अकबर ने 1563 में हिन्दुओं पर लगने वाला तीर्थयात्रा कर को समाप्त कर दिया। अगले ही वर्ष 1564 में अकबर ने हिन्दुओं पर लगने वाले जजिया कर को भी समाप्त कर दिया और 1565 ई. में अकबर ने युद्ध बंदियों के बलपूर्वक धर्म परिवर्तन की परंपरा को समाप्त कर दिया। एक उदार धार्मिक नीति की दिशा में यह प्रथम महत्वपूर्ण कदम थे।

सम्राट अकबर के धार्मिक विचारों में कई परिवर्तन आये जो मुख्यतः अबुल फजल, उसके भाई फैजी और इन दोनों के पिता शेख मुबारक के प्रभावों का प्रतिफल था। अबुल फजल राजत्व को एक दैवी प्रकाश के रूप में प्रस्तुत किया और यह तर्क दिया कि सम्राट को ईश्वर के गुणों का प्रतिबिम्ब होना चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर अपने द्वारा रचित मनुष्यों के बीच कोई अन्तर नहीं करता और सारे मनुष्य ईश्वर के सामने समान हैं इसी तरह सम्राट को भी सभी प्रजा के प्रति एक समान और सहिष्णु नीति को अपनाना चाहिए। यह नीति सुलह कुल की नीति के नाम से विख्यात है। इसका उद्देश्य सब धर्मों के प्रति समान व्यवहार करना था। अबुल फजल के अनुसार इस नीति का अनुसरण करने वाला शासक ही वास्तव में न्यायप्रिय शासक है और अपनी प्रजा का सच्चा नेता अथवा इमाम-ए-आदिल है।

इन विचारों ने अकबर को विभिन्न धर्मों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की प्रेरणा दी और इसने अपने

राजधानी फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना अथवा प्रार्थना भवन का 1575 में निर्माण कराया। यहाँ प्रत्येक बृहस्पतिवार को विभिन्न धर्मों के आचार्यों को वाद-विवाद के लिए आमंत्रित किया गया। वर्ष 1578 ई. तक वाद-विवाद का यह कार्यक्रम चलता रहा किंतु अकबर को इससे संतुष्टि नहीं हुई। उसने अनुभव किया कि विभिन्न धर्मों के मानने वाले एक दूसरे के धार्मिक विचारों को समझने या सराहने के बजाय केवल आलोचना में अभिरुचि रखते हैं। कभी-कभी तो यह आलोचना हद को पार कर जाती है। अतः अकबर ने इसे रोक दिया परंतु व्यक्तिगत रूप से विभिन्न धर्मों के आचार्यों से विचार विमर्श जारी रखा।

धार्मिक वाद-विवाद के कार्यक्रम से प्राप्त ज्ञान के आधार पर अकबर ने 1579 में एक घोषणा-पत्र अथवा महजर जारी किया जिसके अनुसार अकबर को धार्मिक प्रश्नों पर अपना मत व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इस घोषणा को लेकर इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। स्मिथ जैसे इतिहासकार इसकी तुलना पोप के असीम अधिकारों से सम्बन्धित Infallibility Decree से करते हैं। मैलेसन का मानना है कि इस घोषणा से अकबर को हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी एवं अन्य प्रजा के साथ मुसलमानों के समान व्यवहार का अधिकार प्राप्त हुआ। कुछ अन्य इतिहासकारों के अनुसार इस महजर द्वारा अकबर ने एक धार्मिक प्रधान के रूप में अपने आपको स्थापित किया और अब उसकी शक्तियाँ खलीफा एवं सम्राट दोनों की शक्ति के रूप में प्रकट हुईं। किंतु ये सारे विचार अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। महजर द्वारा अकबर ने असाधारण अधिकार प्राप्त नहीं किया बल्कि उसने केवल उलेमा वर्ग के राजनीति में हस्तक्षेप की संभावना को समाप्त किया क्योंकि वह जानता था कि उदार धार्मिक नीति का सबसे प्रबल विरोध उलेमा वर्ग द्वारा ही हो सकता है।

स्वाभाविक रूप से अकबर के इस निर्णय का उलेमा वर्ग द्वारा विरोध हुआ और 1579 से 1581 के बीच अकबर के साम्राज्य में एक गंभीर विद्रोह की स्थिति बनी रही। जिसे उलेमा वर्ग ने भड़काया किंतु अकबर ने बड़े धैर्य से इस समस्या का समाधान किया। उलेमा

Scanned with CamScanner

वर्ग की शक्ति नियंत्रित होने के बाद अकबर की धार्मिक नीति के क्षेत्र में एक अंतिम प्रयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ।

यह अंतिम प्रयोग दीन-ए-इलाही के नाम से विख्यात है जो 1581 के आसपास आरंभ हुआ। कुछ इतिहासकारों ने दीन-ए-इलाही को अकबर द्वारा स्थापित नये धर्म की संज्ञा दी है जो वस्तुतः गलत है। अकबर ने इसे धर्म के रूप में कभी नहीं देखा। केवल तत्कालीन साक्ष्य भी इस ओर इशारा नहीं करते। केवल जहाँगीर के समकालीन मोहसिन फानी ने अपनी रचना दबिस्तान-ए-मजाहिब में पहली बार इसे एक स्वतंत्र धर्म के रूप में वर्णित किया है। लेकिन जब इसके स्वरूप पर हम नजर डालते हैं तो यह विभिन्न धर्मों के आदेशों एवं उपदेशों का संकलन मात्र दिखता है। अकबर द्वारा प्रचारित करने का मुख्य उद्देश्य केवल इतना था कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में एकता एवं सामंजस्य की स्थापना की जा सके। दीन-ए-इलाही के अन्तर्गत निम्नलिखित मुख्य आदर्श प्रस्तुत किये गये —

(क) सम्राट को अपना आध्यात्मिक गुरु मानना।
(ख) उसके आदेशानुसार आचरण करना।
(ग) अपने जन्मदिन पर भोज एवं दान का आयोजन करना एवं मरणोपरान्त के अर्द्धजीवन हेतु दान आदि करना।
(घ) शाकाहार भोजन लेना।
(ङ) सांसारिक सुखों एवं कामनाओं का परित्याग।
(च) विशुद्ध नैतिक जीवन व्यतीत करना।

उपरोक्त उपबन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दीन-ए-इलाही कोई नया धर्म नहीं था। इसमें नये धर्म की कोई विशेषता नहीं थी। पूजा की प्रकृति, धार्मिक ग्रंथ, पुजारी वर्ग और पूजा स्थल आदि हरेक धर्म की विशेषता है मगर इनका कोई उल्लेख दीन-ए-इलाही में नहीं है। अकबर ने दीन-ए-इलाही के प्रचार के लिये न तो प्रलोभन दिया और न दबाव से काम लिया बल्कि उसने मात्र एक नयी विचारधारा को लोगों के आगे प्रस्तुत किया और इसे नागरिक लोगों पर छोड़ दिया कि वे इसे स्वीकार करें

Scanned with CamScanner

या न करे। अकबर का मानना था कि कोई विचार किसी पर आरोपित नहीं किया जा सकता।

चूँकि यह विचार अपने समय से काफी आगे था अतएव सामान्य जनता का विश्वास नहीं प्राप्त कर सका। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि यह लोकप्रिय नहीं हो पाया। लेकिन जिस उद्देश्य से अकबर ने इसे लाया था वह सफल हुआ, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण की दृष्टि से।

इस तरह हम देखते हैं कि अकबर की धार्मिक नीति ने सद्भाव एवं सामंजस्य का ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके बल पर वह न केवल साम्राज्य विस्तार किया बल्कि उसपर निर्विवाद शासन किया। इस दृष्टि से उसकी धार्मिक सफल रही।

-o-

P-5